लकड़ी का बक्सा

संगीता गुन्देचा

यह बात तब की है, जब मैं छोटा था और मालवा के एक छोटे-से कस्बे में रहता था। पता नहीं क्यूँ उस समय को याद करने पर मुझे वहाँ सुबह-सुबह गोबर से घर लीपती हुई अपनी माँ दिखाई देती है। घोड़े की लीद और गाय के गोबर से बने लीपन को लीपती हुई। अपने सधे हाथों से उखड़ी हुई ज़मीन पर लीपन के अर्द्धचन्द्राकार खींचती हुई। उस दृश्य के ठण्डे उजलेपन में मेरी आँखें न जाने क्यूँ हर बार ठहर-सी जाती हैं। तब मेरी उम्र कोई आठ बरस की रही होगी। मैं माँ की अकेली सन्तान था। वे चाहती थीं कि उन्हें लड़की हो लेकिन जब मैं पैदा हुआ वे दुखी नहीं हुईं। उन्होंने मुझे लड़कियों की तरह कपड़े पहनाना शुरू कर दिया। वे बहुत समय तक मेरी लम्बी चोटी बाँधती रहीं। उन्होंने मेरे कानों में बालियाँ भी डाल रखी थीं। दो चमकीली सुनहली बालियाँ।

इन्हें जब मैं कूड़ेघर में फेंक आता हूँ, ये वहाँ पड़ी-पड़ी सुबकती रहती होंगी फिर अपने प्राण छोड़ देती होंगी।

माँ में मुझे हमेशा से दूसरों के प्रति करुणा और सम्मान दिखाई देता था। सिर्फ मनुष्यों, जानवरों के लिए नहीं, प्रकृति मात्र के प्रति। वह पेड़-पौधों का भी बहुत सम्मान करती थी। जब कभी वह अपनी सखियों के साथ मन्दिर जाती और वे रास्ते में पड़ने वाली लताओं या वृक्षों से फूल तोड़ने लगतीं, माँ उनसे कहती, "इन्हें मत तोड़ो। इनमें जान है।" माँ की सखियाँ उस पर हँसने लगतीं। हमारे घर के आँगन में बीचोंबीच एक आँवले का पेड़ था। मुझे अच्छी तरह याद है कि माँ मुरब्बा डालने के लिए अपने आप टूटकर गिरे या पक्षियों के गिराए फलों का इन्तज़ार करती। चिड़ियों या तोतों की चोंच लगे फलों में एक खास बात यह होती है कि वे जूठे होने पर भी जूठे लगते नहीं हैं। वे पक्षी मुझे अब ऐसे जान पड़ते हैं जैसे वे माँ के लिए शबरी का काम किया करते थे।

बहरहाल, नौ बरस तक का होते-होते मुझे हरेक चीज़ में जान महसूस होने लगी। खासकर उन चीजों में जिन्हें बेकार समझकर हम कूड़ेघर में फेंक आते हैं। मसलन, मूँगफली के छिलके, टूटे पेन, कॉपियाँ, काँच की चटकी हुई शीशियाँ, सब्ज़ियों और फलों के छिलके और ऐसी कई चीज़ें जो माँ मुझे कूड़े में फेंक आने को कहती थीं। धीरे-धीरे मुझे लगने लगा कि माँ इन चीज़ों को बेवजह ही कूड़ेघर में फिंकवा देती है। इनमें जान है। इन्हें जब मैं कूड़ेघर में फेंक आता हूँ, ये वहाँ पड़ी-पड़ी सुबकती रहती होंगी और फिर अपने प्राण छोड़ देती होंगी। मेरी न जाने क्यूँ माँ से यह कहने की हिम्मत ही नहीं होती थी कि माँ हम कचरा बाहर कूड़े में क्यूँ फेंक आते हैं। उसे सहेजकर घर में क्यूँ नहीं रख लेते। कचरा जब मरता होगा, उसे कितनी तकलीफ होती होगी। कारण शायद यह था कि कचरा फेंकना मुझे सभी घरों की आदत में शुमार दिखता था। मैंने माँ की तरफ से उत्तर भी खुद ही खोज लिया था कि वह कहेगी, "सब कचरा फेंकते हैं, इसलिए हम भी फेंक देते हैं।" माँ मुझे जब टट्टी करने के लिए भेजती, मैं बहुत देर से लौटता। यह सोचकर बैठा रहता कि टट्टी जब तक मेरे पेट में है, वह ज़िन्दा है। जैसे ही वह बाहर निकलकर गिरेगी और उस पर पानी गिरेगा वह मर जाएगी।

दीवाली आई। माँ ने घर की सफाई करना शुरू की। घर के दोनों कमरे, पीछे का बरामदा और टट्टी-पेशाबघर चूने से पोते गए। वे चमचमाने लगे। माँ ने पूरा घर लीपा और चौखट पर गेरू और चूने से माँडने बनाए। फिर उसने पुराने और बेकाम के सामान की छँटाई शुरू की, जिसे वह फेंकने वाली थी। टूटी बाल्टियाँ और मग, दवाई और क्रीम खत्म हो जाने के बाद बची डिब्बियाँ, पुराने टाट, टुकड़ा-टुकड़ा बिजली के तार! सब एक-एक कर मेरी आँखों के सामने से गुज़रते जा रहे थे। जब कोई चीज़ माँ फेंकने के ढेर में रख देती लेकिन फिर कुछ सोचते हुए उसे उठाकर अलग कर लेती तो मेरी खुशी का ठिकाना न रहता। मैं माँ को सोच-सोचकर उन चीज़ों के उपयोग के बारे में बताने लगता जिनके बारे में वह विचार कर रही होती। दरार पड़े हुए कप और बस्सियों के बारे में मैंने माँ से कहा कि हम उनमें भीख माँगने वालों को कुछ खाने-पीने के लिए दे सकते हैं। वह तुरन्त मान गई। टूटे हुए मटके को गमले की तरह इस्तेमाल करने की सलाह भी मैंने ही माँ को दी। कई चीज़ों को बचाने के बावजूद फेंकने वाली चीज़ों का ढेर इतना बड़ा हो गया था कि उसे देखकर मेरी आँखों में आँसू ढलक आए। मैं घर से बाहर निकल आया। फिर मैं घूमकर घर के पीछे की गली में बने कूड़ेघर तक गया। कुछ सोचते-सोचते पीछे के दरवाज़े से जैसे ही मैं घर के अन्दर आया, बरामदे के कोने में रखा लकड़ी का एक बड़ा-सा बक्सा मुझे दिखाई दिया। मेरा दिमाग चल पड़ा था। मैंने माँ से कहा कि वह थोड़ी देर आराम कर ले। सारा कचरा मैं ले जाकर कूड़ेघर में फेंक आऊँगा। माँ के थककर सो जाने के बाद मैंने धीरे-धीरे सारा सामान लकड़ी के बक्से में करीने से जमा दिया और अच्छी तरह से बक्से का दरवाज़ा बन्द कर दिया। यह करते हुए मुझे जो खुशी हुई, वह मैंने फिर और किसी काम में कभी महसूस नहीं की। यह करते हुए मैं मन ही मन एक सयाना आदमी बन गया था, जिसने कितनी ही जानें बचाईं थीं। उस दिन शाम का खाना नहीं बना था। माँ और मैंने फल खाकर काम चला लिया था। ज़ाहिर है केले और सेब के छिलके फेंकने मैं ही गया था।

पिछले दो दिनों से मैं सफाई के बहाने से स्कूल नहीं गया था। पर, अगले दिन सुबह बिना किसी खौफ के मैं स्कूल चला गया। माँ दिनभर में जमा घर का कचरा एक बाल्टी में रख देती और शाम को मुझे फेंकने के लिए भेजती थी। स्कूल से लौटने पर पहले मैंने करीब आधी भरी हुई बाल्टी देखी फिर बरामदे तक गया। कोने में नज़र डाली और लौट आया। दूसरे दिन, बस्ता कन्धे से उतारने के बाद मैंने बाल्टी में झाँका। वहाँ भिण्डी, बैंगन, प्याज़ के छिलके और धूल भरे कुछ कागज़ जमा थे। फिर मैं धीरे-धीरे बरामदे तक गया। लकड़ी के बक्से की ओर अपनी सरसरी नज़र कुछ इस तरह डाली कि वह वहीं रखा है पर कोना खाली था। मैंने अपनी धुरी पर घूमकर पूरे बरामदे में देखा। बक्सा कहीं नहीं था। मैं दरवाज़ा खोलकर कूड़ेघर की ओर भागा। कूड़ेघर में मेरा बक्सा लुढ़का हुआ पड़ा था। उसका दरवाज़ा खुला था। उसके भीतर का सामान बड़ी बेतरतीबी से बाहर निकल आया था। मैं कूड़ेघर के भीतर कूद पड़ा। मैंने लुढ़के हुए लकड़ी के बक्से को सीधा करने की भरसक कोशिश की, लेकिन वह मुझसे हिला तक नहीं। मैंने अपने दोनों हाथों में बक्से को भर लिया और अपने गाल उससे टिकाए हुए बैठ गया। हवा का तेज़ झोंका आया और मेरे नथुनों में असहनीय दुर्गन्ध भरती चली गई। मैं कूड़ेघर से बाहर निकल आया। मैं समझ गया था कि लकड़ी का बक्सा और उसके भीतर की चीज़ें अभी-अभी दम तोड़ चुकी हैं।

दो-तीन दिन बाद मैं पहले की तरह ही बाल्टी उठाकर कूड़ेघर पर कचरा फेंकने के लिए जाने लगा। मुझे नहीं पता क्या लेकिन बक्से की घटना के बाद से मेरे भीतर कुछ टूटा ज़रूर था।

चित्र : अतनु राय